इकाई 25 कृषक वर्ग संरचना

इकाई की रूपरेखा

25.0 उद्देश्य

इस इकाई में कृषक समाजों की संरचना के बारे में निम्नलिखित पर विशेष ध्यान देते हुए चर्चा की गई है। इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप :

- कृषक समाज की संरचना का अभिप्राय समझ सकेंगे,
- कृषक समाजों की धारणाएँ एवं संकल्पनाएँ जान सकेंगे, तथा
- भारत में कृषक वर्ग संरचनाएँ एवं उनका निर्माण की चर्चा कर सकेंगे।

25.1 प्रस्तावना

कृषक समाज की संरचना का अभिप्राय: साधारण शब्दों में कृषक समाज, व्यवस्थाएँ या ऐसे व्यक्तियों का समूह हैं जो अपनी आजीविका मुख्यत: खेती व उससे संबंधित पशु पालन जैसे कार्यों से प्राप्त करते हैं। कृषिक उत्पादन या खेती स्पष्टत: एक आर्थिक गतिविधि है, इस प्रकार अन्य आर्थिक गतिविधियों की तरह कृषि उत्पादन को भी सामाजिक संबंधों के ढाँचे में रखा जाता है। जो लोग खेती करते हैं वे विभिन्न सामाजिक कार्यों से परस्पर एक दूसरे से मिलते रहते हैं। कुछ लोग स्वयं अपनी भूमि में खेती करते हैं जबकि कुछ लोग श्रमिक के रूप में कार्य करते हैं तथा कुछ अपनी ज़मीन पट्टे पर दूसरों को दे देते हैं और फसल में साझीदार बन जाते हैं। वे न केवल एक दूसरे से मिलते हैं अपितु उन्हें दूसरी श्रेणियों के लोगों से भी नियमित रूप से मेल-जोल रखना पड़ता है क्योंकि वे खेती के लिए आवश्यक विभिन्न प्रकार के कार्य करते हैं। उदाहरण के लिए पुरानी जजमानी व्यवस्था में भी जो स्वयं अपनी ज़मीन में खेती करते थे विभिन्न कार्यों के लिए अनेक स्तरों पर विभिन्न जातियों के समूहों के सदस्यों पर निर्भर रहते थे।

बॉक्स 25.01

किसानों को फसल का कुछ भाग विनिमय के रूप में विभिन्न जाति वर्गों के सदस्यों को दिया जाता था। इसी प्रकार अधिकांश कृषक नकद पैसा पाने के लिए अपनी फसल का एक हिस्सा बाज़ार में बेचते हैं जिससे वे खेती में काम आने वाली आधुनिक चीज़ें तथा अपनी ज़रूरतों की अन्य वस्तुएँ खरीदते हैं। बाजार से क्रय-विक्रय के लिए किसान बिचौलियों की सहायता लेते हैं।

ये सभी पारस्परिक संबंध एक परंपरागत व्यवस्था में निभाए जाते हैं। कृषि के इस सामाजिक या पारंपरिक व्यवस्था का सर्वाधिक महत्वपूर्ण पक्ष है भू मालिकों की तथा खेती करने वालों के बीच संबंधों की प्रकृति। किसी समाज में खेती करने वाली परंपराएँ और भू मालिकों की व्यवस्था एक लम्बे ऐतिहासिक काल में विकसित हुई है।

किसी ग्रामीण समाज में अपनी ज़मीन रखने वालों की एक सीमा तक शक्ति एवं दबदबा होता है। इस प्रकार भू मालिकों तथा उन्हें विभिन्न प्रकार की सेवाएँ प्रदान करने वालों के बीच स्थापित संबंधों को हम कृषक वर्ग संरचना या व्यवस्था कहते हैं।

25.2 कृषक समाजों की धारणाएँ

आधुनिक औद्योगिक समाजों में विभिन्न वर्ग समूहों की पहचान करना आसान है (जैसे कि श्रमिक वर्ग, उद्योगपति तथा मध्य वर्ग)। इसकी अपेक्षा कृषक समाजों की सामाजिक संरचना में अनेक प्रकार की भिन्नताएँ होती हैं। कृषक वर्ग संरचना विभिन्न क्षेत्रों में बदलती रहती है। आधुनिक समय में नई बुनियादी व्यवस्थाओं के बनने से अधिकांश कृषक समाजों में स्थिति और भी जटिल हो गई हैं। पश्चिम के अनेक विकसित समाजों में कृषि अर्थव्यवस्था एक गौण क्षेत्र रह गया जिसमें बहुत कम लोग कार्यरत है जबकि तीसरी दुनिया में अधिकांश लोग कृषि कार्य में है तो भी इसका महत्व काफी कम हो गया है। इस प्रकार कृषक सामाजिक सरंचना को अच्छी प्रकार समझने के लिए हमें एक बात का ध्यान रखना होगा कि कृषक वर्ग संरचना ऐसा कोई एक रूप नहीं है जिसे सभी समाजों पर लागू किया जा सके।

अभ्यास 1

अपने निकट के किसी गाँव में जाएँ और वहाँ की विभिन्न जातियों और उसके विभिन्न वर्गों को देखें। यह जातियों से कैसे संबंधित है? अपने निष्कर्ष लिखें तथा अपने अध्ययन केंद्र पर अन्य छात्रों से तुलना करें।

25.2.1 एक जैसे कृषक समाज की पुरातन धारणा

मानव वैज्ञानिकों ने दूसरे विश्व युद्ध के बाद कृषक समाज की धारणा विकसित की। यह धारणा मुख्यत: पश्चिमी अनुभवों से आई है। कृषक समाज का उदय व्यक्तियों के सामाजिक एवं आर्थिक जीवन के कबीला रूप से अलग होकर खेती द्वारा आजीविका कमाने के साथ आरंभ हुआ। उन्होंने छोटी-छोटी व्यवस्थाओं में भी रहना आरंभ किया। इसके बाद कुछ प्रतीकात्मक कृषक समाज औद्योगिक क्रांति आरंभ होने से पूर्व भी देखे गए। औद्योगिक क्रांति आने से अर्थव्यवस्था का विकास हुआ और आधुनिक जीवन शैली का प्रसार होने से पारंपरिक 'कृषक जीवन शैली' धीरे-धीरे बदलने लगी। वर्तमान में अपने मानवतावादी संदर्भों में यह स्पष्टत: एक जैसी सामाजिक संरचना बन गई। किसानों के सामाजिक और आर्थिक संगठनों के संदर्भ में वे

के संदर्भ में वे लगभग एक जैसे हैं। वे परिवार की सहायता से अपने खेतों में काम करते हैं क्या मुख्यत: अपने उपभोग के लिए फसल उगाते हैं। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि उनकी कृषक सभ्यता में कोई महत्वपूर्ण अंतर नहीं है। कमोबेश कृषक सभ्यता एक जैसी है तथा शहरी कुलीन वर्ग द्वारा उस पर बाहर से प्रभुत्व जमाया जाता है। इरिक वोल्फ बताता है कि 'प्राचीन या आदिम जातियों' से भिन्न कृषक समाज अधिक फसल (अपने उपभोग/आवश्यकता से अधिक) पैदा करते हैं जो प्राय: शहरों में अधिपत्य करने वाले शासकों को प्राय: भूमि कर या भू राजस्व के रूप में चली जाती है।

सांस्कृतिक एवं सामाजिक अर्थों में किसान आधुनिक व्यावसायिक वर्ग से मूलत: भिन्न है। उनका कार्य के प्रति दृष्टिकोण तथा ज़मीन से रिश्ता आधुनिक औद्योगिक समाजों के मुनाफाखोरों से बहुत अलग है। कृषक सभ्यता पर मानवतावादी प्रथम अनुसंधान करने वाले रोबर्ट रेडफील्ड का कहना है कि 'कृषक सभ्यता एक सार्वभौमिक मानवीय प्रकार' है जिसमें किसानों का अपनी ज़मीन से भावनात्मक संबंध होता है। उनके लिए कृषि मुनाफे का व्यवसाय न होकर 'आजीविका और जीवन शैली' है।

इस प्राचीन चर्चा के अनुपालन में थ्योडर शनीन का तर्क है कृषक समाज का एक 'आदर्श रूप' वह किसानों को ऐसे कृषि उत्पादक के रूप में परिभाषित करता है जो अपने पारिवारिक परिश्रम और छोटे-छोटे उपकरणों की सहायता से प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से मुख्यत: अपने उपभोग के लिए फसल पैदा करता है। साथ ही राजनीतिक एवं आर्थिक रूप से अधिकार संपन्न व्यक्तियों के अहसानों को भी पूरा करता है। वह आगे कृषक समाज के चार स्वतंत्र घटकों का भी परिचय देता है :

i) कृषक परिवार मूलत: सामाजिक संगठन के एक बहु आयामी इकाई के रूप में कार्य करता है। परिवार खेतों का संचालन कृषक संपत्ति की एक बड़ी इकाई के रूप में उत्पादन, उपभोग, कल्याण, सामाजिक पुनरुत्पादन, पहचान, सम्मान, सामाजिकता तथा कल्याण के लिए करता है। व्यक्ति की प्रवृत्ति संपूर्ण पारिवारिक व्यवहार एवं कुल के अधिकारों को प्रस्तुत करने की होती है।

ii) भूमि पालन या कृषि का कार्य मुख्यत: जीविका के साधन के लिए किया जाता है। परंपरागत रूप में इसे सामाजिक संगठन तथा कम तकनीकी स्तर वाला माना जाता है।

iii) कृषक समाज विशिष्ट सांस्कृति रूपों वाले होते हैं जिसका संबंध लघु ग्रामीण समुदाय की जीवन शैली हो जाता है। कृषक सभ्यता प्राय: पारंपरिक व्यवहार के अनुरूप है तथा आमने-सामने के संबंध होना उनकी विशेषता है। तथा

iv) किसानों पर बाह्य प्रभुत्व। किसानों को अधिकारों के स्रोतों से एक हाथ दूर रखा जाता है। शनीन का कहना है कि उन्हें राजनीतिक रूप से अधीन रखने का संबंध उनकी सांस्कृतिक अधीनस्थता तथा आर्थिक शोषण से है।

इस प्रकार की व्यवस्था में यह दिखाई देता है कि किसानों पर बाह्य हुकुमत चलाई जाती है, वे एक-दूसरे से अधिक भिन्न नहीं है विशेषत: वर्ग स्तर के रूप में। दूसरे शब्दों में कृषक सभ्यता की इस प्राचीन धारणा में कृषक समाज में आंतरिक रूप से वर्ग भिन्नताएँ नहीं है। सामाजिक संगठन मुख्य इकाई है किसान या कृषक परिवार।

बोध प्रश्न 1

1) एक जैसे (समरूप) कृषक समाजों की धारणा का वर्णन करें। अपना उत्तर लगभग दस पंक्तियों में लिखें।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

2) शनीन के कृषक समाज के 'आदर्श प्रकार' की चर्चा करें। उत्तर लगभग 10 पंक्तियों में दें।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

यद्यपि कृषक समाज की यह संकल्पना यूरोपीय समाजों के विशेष अनुभवों से आई है। विश्व के विभिन्न क्षेत्रों से उपलब्ध ऐतिहासिक साहित्य यह दर्शाता है कि कृषक समाज उतने स्वतंत्र नहीं थे जितना कि इन ग्रंथों में दिखाया गया है। आंतरिक रूप से कृषक समाजों में विभिन्न स्तरों पर अनेक भिन्नताएँ भी थी। उदाहरण के लिए, भारत में ग्रामीण समाज हमेशा जातियों में विभाजित रहा तथा केवल कुछ वर्गों के पास ही खेती करने का अधिकार था जबकि अन्य वर्ग उन्हें विभिन्न प्रकार की सेवाएँ प्रदान करते थे। इसी प्रकार यूरोप के अनेक भागों में कृषि दास प्रथा थी जहाँ पर भूअधिपति कृषकों पर शासन करते थे। इन समाजों को सामंती समाज भी कहा जाता था।

25.2.2 सामंतवादी प्रकार का कृषक समाज

ऐतिहासिक रूप से प्राय: सामंती संकल्पना का प्रयोग उस सामाजिक संगठन के लिए किया गया है जो कबीला समूहों के नियमित कृषक बन जाने के बाद यूरोपीय क्षेत्रों में विकसित हुई। 15वीं तथा 19वीं शताब्दी के दौरान औद्योगिक क्रांति की सफलता के बाद सामंती समाज विलुप्त होने लगे तथा आधुनिक पूँजीवादी अर्थव्यवस्था का विकास होने लगा। फिर भी अनेक वर्षों तक सामंती शब्द जातीय अर्थ में भी प्रयोग होता रहा तथा विश्व के अन्य भागों में पूर्व आधुनिक कृषक समाजों को परिभाषित करने के लिए बखूबी प्रयोग होता रहा।

'कृषक समाज' की संकल्पना के साथ तुलना करने पर सामंती शब्द कृषक वर्ग संरचना का एक भिन्न भाव व्यक्त करता है। सामंती समाजों में कृषकों को पराधीन वर्ग के रूप में माना जाता था। जिस ज़मीन में वे खेती करते थे कानूनन वह उनकी नहीं थी। उन्हें केवल खेती करने का अधिकार था लेकिन ज़मीन प्राय: कानूनन अधिपति या सामंत की होती थी। सामंतवाद में कृषक वर्ग की अन्य विशेषता थी कृषक और भूमि पति के बीच 'निर्भरता' और 'आश्रय- का संबंध कृषकों को भूमिपतियों के प्रति 'वफादारी' तथा अहसान मंद होना पड़ता था। स्वामी भक्ति की भावना का प्रदर्शन न केवल फसल का हिस्सा देकर किया जाता था अपितु अनेक बार बिना किसी मज़दूरी के अनेक काम भी करने पड़ते थे इस प्रकार की व्यवस्था का एक उदाहरण है 'भिखारी' प्रथा (मज़दूरी रहित श्रम) जो भारत के अनेक भागों में पीछे काफी समय तक विद्यमान थी।

25.2.3 समकालीन कृषक समाज: आधुनिक पूँजीवादी व्यवस्था का एक उपक्षेत्र

पश्चिमी देशों में 19वीं शताब्दी में तथा शेष दुनिया में 20वीं शताब्दी में औद्योगिकरण के प्रसार से अर्थव्यवस्था के कृषि क्षेत्रों में भी महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए। कृषिक अर्थव्यवस्था में हुए दो महत्वपूर्ण परिवर्तनों को देखा जा सकता है। पहला, कृषि का महले जैसा महत्व समाप्त हो गया तथा यह अर्थव्यवस्था का एक मामूली क्षेत्रा रह गया। उदाहरण के लिए, पश्चिम के अनेक देशों में आज भी कुल कार्य बल की बहुत कम संख्या इस क्षेत्र में कार्य करती है। (दो से पाँच या छ: प्रतिशत) इन देशों की सकल राष्ट्रीय आय में भी इसका योगदान अधिक नहीं है। तीसरी दुनिया के देशों में भी कुछ समय से कृषि का महत्व कम हो चुका है। उदाहरण के लिए भारत में अधिकांश आबादी कृषि कार्य में लगी हुई है तो भी कुल राष्ट्रीय आय में इसका योगदान पर्याप्त रूप से कम हो गया है। (आजादी के समय लगभग साठ प्रतिशत था जो 1990 के दशक में घट कर तीस प्रतिशत से भी कम हो गया है)।

कृषक समाज में होने वाला दूसरा महत्वपूर्ण परिवर्तन इसकी आंतरिक सामाजिक संरचना में था। पिछली शताब्दी व उसके आस-पास विश्व के अनेक भागों में कृषि उत्पादनों में व्यापक परिवर्तन आया। पूर्ववर्ती सामाजिक संरचनाओं के रूप जैसे 'सामंतवाद' तथा 'कृषक समाज' (जिनकी चर्चा उपर की गई है) अधिक भिन्न सामाजिक संरचनाओं के आने से विलुप्त हो रहे थे। यह मुख्यत: औद्योगिकीकरण तथा आधुनिकीकरण की प्रक्रियाओं के प्रभाव के कारण हो रहा था। कृषि अनेक कार्यों जैसे हल चलाना और फसल साफ करना आदि के लिए आधुनिक उद्योग ने अनेक मशीनें और उपकरण प्रदान किए थे। कृषि संबंधी इन मशीनों के कारण ज़मींदार कम समय में अधिक ज़मीन में खेती करने में सक्षम हो गए। कुछ अन्य प्रौद्योगिकीयों ने भी किसानों को रासायनिक उर्वरक तथा अधिक फसल देने वाले अनेक प्रकार के नए बीज भी प्रदान किए। इन सभी परिवर्तनों के परिणामस्वरूप फसलों की उत्पादकता में

व्यापक वृद्धि हुई। इन नई कृषि तकनीकों के कारण न केवल उत्पादकता में वृद्धि हुई अपितु कृषक समाजों के सामाजिक संबंधों में भी व्यापक परिवर्तन हुए।

बॉक्स 25.02

मशीनीकरण और आधुनिकीकरण से किसानों के पास अपनी आवश्यकता से अधिक फसल होने लगी। अतिरिक्त फसल बाज़ार में आई। ये किसान ऐसी फसलों का भी उत्पादन करने लगे जो स्थानीय उपभोक्ताओं के लिए प्रत्यक्ष रूप से काम की नहीं थी। ये 'नकदी फसलें' केवल बाज़ार में बेचने के लिए उगाई जाती थी। कृषकों की नए कृषि संबंधी उपकरण खरीदने के लिए नकद धन की आवश्यकता थी। दूसरे शब्दों में कृषि के मशीनीकरण ने इसे राष्ट्र और विश्व की व्यापक बाज़ारू अर्थव्यवस्था से जोड़ दिया।

25.2.4 कृषि और बाज़ार

कृषि के मशीनीकरण और इसके व्यापक बाज़ार अर्थव्यवस्था से जुड़ने के कारण कृषिक क्षेत्र में उत्पादन के नए सामाजिक संबंध भी बनने लगे। कुछ विद्वान मानते हैं कि यह शहरी औद्योगिक अर्थव्यवस्था द्वारा कृषिक अर्थव्यवस्था की दासता का केवल नया रूप है। जबकि कुछ अन्य विद्वानों ने इसे कृषक समाज में होने वाले अधिक मौलिक परिवर्तन के रूप में भी माना। विद्वानों ने इस परिवर्तन प्रक्रिया को कृषि क्षेत्र में पूँजीवादी संबंधों के विकास की संज्ञा दी। कृषि में पूँजीवादी विकास ने पूर्ववर्ती स्वामी भक्ति तथा आश्रय संबंध सहायक व्यक्तियों में भी बनने लगे। कृषि उत्पादन में शामिल आबादी की विभिन्न श्रेणियों के बीच संबंध स्वामी भक्ति और अहसान की बिना किसी भावना के औपचारिक होने लगे।

अभ्यास 2

कुछ ग्रामीणों से उनके गाँव में कृषि के मशीनीकरण होने से पड़ने वाले प्रभावों के बारे में चर्चा करें। अपने निष्कर्ष लिखें तथा अध्ययन केंद्र पर अन्य छात्रों से तुलना करें।

यह प्रक्रिया कृषकों में अंतर डालने वाली भी थी। किसान भिन्न स्तरों और वर्गों में विभाजित होने लगे। फिर बाज़ार तंत्र ने भी ऐसे किसानों पर इस तरह दबाव डाला कि कुछ का अस्तित्व बना रहा तथा कुछ बेचारे घाटे में रहे तथा वे भूमि विहीन श्रमिक बन गए। इसी प्रकार जो प्राय: पट्टेदारी में काम करते थे उन्हें उन ज़मीनों से बेदखल कर दिया गया जिन पर वे खेती करते थे और भूमि मालिकों द्वारा उन्हें मज़दूरों के रूप में नियुक्त किया जाने लगा। इसी प्रकार कुछ कृषि संबंधी आबादी धनवान बन गई तथा कुछ के पास छोटे-छोटे खेत रह गए।

किसानों का अपने व्यवसाय के प्रति जो दृष्टिकोण था उसमें भी परिवर्तन आने लगा। पूँजीवाद से पूर्व या पारंपरिक समाजों में वे मुख्यत: अपने उपभोग के लिए ही फसलों का उत्पादन करते थे। खेतों में कार्य पारिवारिक परिश्रम से ही किया जाता था। किसानों के लिए कृषि आजीविका का साधन तथा जीवन शैली भी थी।

ज्यों ही कृषि का पूँजीवादी बाज़ार अर्थव्यवस्था से संबंध हुआ तभी से कृषिक समाज की व्यवस्था में भी परिवर्तन होने लगे और इससे किसानों के अपने व्यवसाय के प्रति दृष्टिकोण में

भी परिवर्तन होने लगा। वे कृषि को एक उद्यम (व्यवसाय) मानने लगे। वे अपने खेतों में आधुनिक मशीनों से कार्य करने लगे तथा बाज़ार में बेची जाने वाली नकद फसलों का उत्पादन करने लगे। उनका प्रमुख दृष्टिकोण कृषि से मुनाफा कमाने का हो गया। इस प्रकार किसान 'उद्यमी' कृषकों के रूप में विकसित होने लगे। कृषक समाज का पहले वालों से तुलना भी समाप्त होने लगी।

मानवतावादी वर्ग समझे जाने वाला किसान वर्ग अब भिन्न विशिष्टताओं वाला वर्ग बनने लगा। वे विभिन्न श्रेणियों और वर्गों में विभाजित होने लगे। इस प्रकार कृषि में पूँजीवादी विकास होने से कृषक वर्ग संरचना में मौलिक परिवर्तन होने लगे।

कृषिक जीवन का अर्थ: छोटे घर और मामूली सुविधा वाले निम्नवर्ग
साभार: बी. किरण मई

25.3 कृषिक समाजों के विश्लेषणों में वर्ग संकल्पना और इसका उपयोग

मुख्यत: पश्चिम के औद्योगिक समाजों में विद्यमान सामाजिक संबंधों की व्याख्या करने के लिए कुछ समाजशास्त्रियों और अन्य समाज वैज्ञानिकों ने वर्ग संकल्पना की कल्पना की। इनमें प्रमुख थे कार्ल मार्क्स और मैक्स वेबर। प्राय: वर्गों की परिभाषा इस प्रकार दी जाती है। एक जैसे ऐसे आर्थिक संसाधन जिनको बांटने वाले व्यक्तियों के बड़े-बड़े समूहों के लोग जो नेतृत्व करने के योग्य होते हैं और उनकी आर्थिक संसाधनों में हिस्सेदारी होती है तथा उनकी जीवन शैली के प्रकारों को अत्यधिक रूप से प्रभावित करते हैं। संपत्ति का मालिकाना हक और उसके साथ आधिपत्य वर्ग विभेदों के मुख्य आधार माने जाते हैं।

जैसा कि ऊपर वर्णन किया गया है वर्ग संकल्पना का पहली बार प्रयोग पश्चिम के औद्योगिक समाजों में सामाजिक समूहों की व्याख्या करने के लिए किया गया। बाद में विद्वान अन्य व्यवस्थाओं में भी सामाजिक व्यवस्थाओं को समझने के लिए इस संकल्पना का प्रयोग करने

लगे। बीसवीं सदी के आरंभिक वर्षों में लेनिन ने रूस में कृषक समाज में वर्ग भिन्नता की प्रक्रिया को स्पष्ट करने के लिए एक विस्तृत सिद्धांत प्रतिपादित किया। इसी प्रकार चीनी क्रांति के नेता माओ त्से तुंग ने चीनी कृषक समाज के अपने विश्लेषण में इस वर्ग संकल्पना का प्रयोग किया। लेनिन और माओं के ग्रंथों को कृषक वर्ग संरचना और कृषि संबंधी परिवर्तनों को समझने के लिए पथ प्रदर्शक कार्य माना जाता है।

लेनिन का विचार था कि कृषि में पूँजीवाद के विकास से अब तक सामाजिक श्रेणियों में अविभाजित कृषक व्यवस्था अब विभिन्न सामाजिक वर्गों में श्रेणीकृत या विभाजित हो गई। आरंभ में रूसी कृषक व्यवस्था पांच विभिन्न वर्गों में विभाजित थी। ये हैं :

i) भूमिपति, ii) धनी कृषक, iii) मध्य श्रेणी के किसान, iv) गरीब किसान तथा v) भूमि विहीन श्रमिक।

लेनिन ने तर्क दिया कि रूस तथा अन्य देशों में भी किसानों का ध्रुवीकरण होगा। इस प्रकार वास्तव में दो वर्ग होंगे। एक पूँजीवादी किसान तथा दूसरा भूमिविहीन सर्वहारा वर्ग (मज़दूर)।

फिर भी, विश्व के अनेक भागों में कृषि में विकसित पूँजीवाद के व्यावहारिक अनुभव लेनिन की भविष्यवाणी के अनुरूप नहीं थे। यद्यपि कृषि धीरे-धीरे बाज़ार अर्थव्यवस्था में केंद्रित हो रही थी और कृषिक व्यवस्था विभिन्न सामाजिक वर्गों में विभाजित भी हो रही थी तो भी इस बात के कोई प्रमाण नहीं थे कि आबादी केवल दो वर्गों में ही सिमट रही थी। पश्चिमी देशों और तीसरी दुनिया के अनेक देशों में भी मध्य वर्गीय किसानों ने न केवल अपना अस्तित्व बनाए रखा अपितु कुछ देशों में तो उनकी संख्या में वृद्धि भी हुई।

25.4 भारत में कृषिक सामाजिक संरचना एवं भारत में परिवर्तन

जैसा कि पहले वर्णन किया जा चुका है कि एक निश्चित समाज में लम्बी अवधि के बाद कृषक वर्ग संरचना विकसित हुई। लेकिन इसको आकार विभिन्न ऐतिहासिक सामाजिक आर्थिक तथा राजनीतिक घटकों द्वारा दिया गया। ये ऐतिहासिक घटक क्षेत्र दर क्षेत्र परिवर्तन होते रहते हैं। इस प्रकार यद्यपि कोई व्यक्ति कृषक संरचनाओं को विभिन्न संदर्भों में समझने के लिए वर्ग संकल्पना का प्रयोग तो कर सकता है लेकिन विभिन्न क्षेत्रों में इसके व्यावहारिक अनुभव भिन्न-भिन्न होते हैं।

पारंपरिक भारतीय ग्रामीण जातियाँ तथा कृषिक सामाजिक संरचनाएँ 'जजमानी व्यवस्था' के ढाँचे में ही बनी। यह एक विशुद्ध भारतीय परिघटना है। पारंपरिक भारतीय गाँवों में विभिन्न जाति समूह जजमान (संरक्षक) तथा कमीन (दास) में विभाजित थी। जजमान उन जातियों का समूह था जिनके पास अपनी भूमि थी और वे खेती करते थे। कमीन जजमानों को विभिन्न प्रकार की सेवाएँ प्रदान करते थे। जब कमीन जजमानों के लिए कुछ काम करते थे तो जजमान फसल में से कुछ हिस्सा अपने कमीनों को देते थे। यह संबंध परस्पर विनिमय व्यवस्था पर आधारित था।

बोध प्रश्न 2

1) समकालीन कृषिक समाज पर टिप्पणी लिखें। अपना उत्तर लगभग 10 पंक्तियों में दें।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

2) कृषि क्षेत्र में पूँजीवाद के विकास पर लेनिन के विचारों का संक्षिप्त वर्णन करें। अपना वर्णन लगभग 10 पंक्तियों में करें।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

यह कहा जा सकता है कि जो लोग परस्पर इस विनिमय व्यवस्था में शामिल थे, वे एक समान विनिमय नहीं करते थे। ऊँची जातियों वाले और ज़मींदार स्पष्टत: निम्न जाति वालों से अधिक शक्तिशाली थे। जजमानी व्यवस्था के स्वरूप में स्थापित कृषिक संबंधों की संरचना ने जाति व्यवस्था की असमानताओं को और दृढ़ किया। परिणामस्वरूप जाति प्रथा ने असमान भूमि संबंधों को वास्तविकता प्रदान की।

अनेक वर्षों के अंतराल में जजमानी व्यवस्था विलुप्त हो गई तथा ग्रामीण समाज की सामाजिक संरचना में गहन परिवर्तन हुए। कृषक वर्ग संरचना में भी बदलाव आया। ये परिवर्तन अनेक तथ्यों द्वारा प्रस्तुत किए जा चुके हैं।

25.4.1 ब्रिटिश औपनिवेशी शासन में कृषिक समाज में परिवर्तन

ब्रिटिश औपनिवेशी शासकों की कृषिक नीतियाँ अन्य घटकों के साथ इस उप महाद्वीप में कृषिक में परिवर्तनों के लिए बहुत महत्वपूर्ण मानी जाती हैं। भूमि से अधिकतम आमदनी प्राप्त करने के लिए किसानों से भूमि कर एकत्रित किया जाता था। उन्होंने भारतीय गाँवों में संपत्ति से संबंधित कुछ मौलिक परिवर्तन किए। औपनिवेशी शासकों की कृषिक नीति के अंतहीन परिणाम हुए। बंगाल, बिहार और चेन्नई के अनेक भागों तथा संयुक्त प्रांत में उन्होंने पूर्ववर्ती सामाजिक व्यवस्था में कर वसूलने वाले बिचौलियों के रूप में ज़मींदारों को हटा कर भूमि के पूर्ण स्वामित्व अधिकार प्रदान किए।

वास्तव में खेती करने वाले अधिकांश किसान अब नए भूपतियों के पट्‌टेदार बन गए। इसी प्रकार उन्होंने उत्पन्न फसल में हिस्से की अपेक्षा शुल्क रूप में निश्चित राशि की माँग की। इस प्रकार मौसम द्वारा फसल के नष्ट होने के बावजूद उन्हें भूमि कर देने के लिए मजबूर होना पड़ता था।

इन परिवर्तनों से किसानों पर काफी ऋण हो गया। शुल्कों की माँग को पूरा करने के लिए ज़मीनों को गिरवी रखने लगे। आगे चलकर ये किसान साहूकारों और बड़े भूमि मालिकों को ज़मीन सौंपने लगे। इस प्रकार गाँवों में भूमि मालिकों और साहूकारों की उत्पत्ति आधिपत्य वर्ग के रूप में हुई जबकि ग्रामीण किसान कंगाल हो गए। औपनिवेशी शासन के दौरान उत्पन्न नई कृषिक वर्ग संरचना में किसानों को अपनी ज़मीनों को सुधारने और परिश्रम करने के लिए कोई प्रोत्साहन नहीं मिला परिणामस्वरूप कृषि उत्पादन में गिरावट आई।

25.4.2 आज़ादी के बाद कृषिक समाज में परिवर्तन

स्वतंत्रता संग्राम के दौरान राष्ट्रीय नेताओं ने किसानों को इस वायदे पर सक्रिय किया कि औपनिवेशी शासन से मुक्ति के बाद भूमि संबंधी नीतियों में परिवर्तन किया जाएगा। आजादी के तुरंत बाद इसकी प्रक्रिया आरंभ की गई। केंद्रीय सरकार ने राज्य सरकारों को ऐसे भूमि सुधार कानून बनाने के निर्देश दिए जिनमें बिचौलिए भूमि मालिक, ज़मींदार को हटाकर वास्तव में खेती करने वालों को भूमि के स्वामित्व के अधिकार दिए जाएँ। कुछ कानून पट्‌टेदारों की सुरक्षा के लिए भी बनाए गए। राज्यों ने प्रत्येक परिवार के लिए अधिकतम भूमि रखने की सीमा (हदबंदी) को भी निर्धारित किया। फालतू ज़मीन राज्य को सौंपी जानी थी ताकि भूमि विहीनों में वितरित की जा सके।

फिर भी, सभी राज्यों द्वारा कानून बनाए गए लेकिन केवल कुछ मामलों में ही वांछित प्रभाव पड़ा। यह बात सामने आई कि देश के ऐसे क्षेत्रों में जहाँ किसान राजनीतिक रूप से गतिशील थे वहीं पर भूमि सुधार कानूनों का प्रभावी रूप कार्यान्वयन हुआ। हाँ अधिकांश क्षेत्रों में ज़मींदारी प्रथा समाप्त हो गई लेकिन हदबंदी कानूनों का बहुत कम प्रभाव पड़ा।

बॉक्स 25.03

आज़ाद भारत की सरकार ने अनेक विकास कार्यक्रम बनाए ताकि किसानों को अपनी ज़मीनों से अधिक फसल प्राप्त करने के लिए बढ़ावा मिले। इनमें सामुदायिक विकास कार्यक्रम (सी डी पी), सहकारिताएं तथा हरित क्रांति की तकनीक शामिल हैं। ये कार्यक्रम भारतीय गाँवों में कृषि के आधुनिक तरीके अपनाने के लिए बनाए गए। खेती करने वाले किसानों को कम मूल्यों पर नई तकनीकें, बीज तथा उर्वरक प्रदान किए जाते थे। राज्य की अनेक संस्थाएँ उन्हें सस्ते ऋण उपलब्ध कराती थी। यद्यपि सिद्धांतत: यह योजना सभी के लिए बनाई गई थी तो भी देश के अनेक भागों में किए गए अध्ययनों से पता चला है कि सरकारी मदद के लाभ ग्रामीण समाज के सभी वर्गों को समान रूप से प्राप्त नहीं हुए। अधिकांश लाभ पहले से ही धनी तथा शक्तिशाली लोगों ने उठाया। फिर भी, इस पक्षपात के बावजूद इन प्रोत्साहनों से कृषिक अर्थव्यवस्था में कम से कम देश के कुछ भागों में तो महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए। यह तथ्य पंजाब, हरियाणा, पश्चिमी उत्तर प्रदेश, तटीय आंध्र प्रदेश तथा महाराष्ट्र, गुजरात और तमिलनाडु के क्षेत्रों में तो विशेष रूप से सत्य है।

भूमि की उत्पादकता में वृद्धि होने के अतिरिक्त इन परिवर्तनों का भारतीय कृषि के सामाजिक ढाँचे पर प्रभाव पड़ा। भारत के अनेक क्षेत्रों में कृषि को अब व्यावसायिक स्तर प्रदान हो गया। प्राचीन जजमानी संबंध करीब करीब पूरी तरह समाप्त हो गए तथा कृषकों और उनके लिए सेवा प्रदान करने वालों के मध्य अधिक औपचारिक व्यावसायिक संबंध बनने लगे। कुछ विद्वानों ने तर्क दिया कि ये परिवर्तन इस बात का संकेत है कि कृषि में उत्पादन का पूँजीवादी रूप पनप रहा है तथा भारतीय गाँवों में नई वर्ग संरचना उत्पन्न हो रही है।

25.5 भारत में कृषिक वर्ग संरचना

जैसा कि वर्णन किया जा चुका है कि पारंपरिक भारतीय समाज जाति प्रथा पर संगठित रहा है। कृषक संबंध जजमानी व्यवस्था के नियमों के अनुसार निभाए जाते थे। फिर भी भारतीय कृषिक समाज में औपनिवेशी शासकों द्वारा परिवर्तन लागू करने के बाद जजमानी संबंध विलुप्त होने लगे थे। आजादी के बाद भारतीय प्रांतों द्वारा आरंभ की गई आधुनिकीकरण एवं विकास प्रक्रिया ने पुन: पारंपरिक सामाजिक संरचना को और भी कमजोर बना दिया। फिर भी समकालीन भारतीय समाज में जाति प्रथा एक महत्वपूर्ण सामाजिक प्रथा बनी रही। लेकिन आर्थिक जीवन संगठित करने की व्यवस्था के रूप में इसका महत्व अत्यधिक रूप से कम हो गया। यद्यपि भारत के अधिकांश क्षेत्रों में कृषि भूमि पारंपरिक कृषक जाति वर्ग द्वारा खरीदी जाती है तो भी भूमि विहीन वर्गों के साथ उनके संबंध जाति प्रथा के अनुसार लागू नहीं होते हैं। निम्न जाति के भूमि विहीन व्यक्ति अब किसानों के साथ कृषि श्रमिक के रूप में कार्य करते हैं। एक अर्थ में यह कह सकते हैं कि भारतीय गाँवों ने अब जातियाँ वर्ग व्यवस्था में परिवर्तित हो रही हैं।

फिर भी कृषिक सामाजिक संरचना में भिन्नताएँ हैं जैसा कि डी.एन. धांगरे ने बताया है कि 'भारत में वर्गों और समूहों की सामाजिक रचना के बीच संबंध जो भूमि नियंत्रण और भूमि प्रयोग करने वालों के मध्य विशिष्ट संबंध है वे इतने असमान और जटिल हैं कि उन्हें किसी एक सामान्य योजना में सम्मिलित करना कठिन है' (धांगरे, 1983)। फिर भी देश के विभिन्न भागों में विभिन्न कृषक संबंधों में असमानताओं के बावजूद कुछ विद्वानों ने उन्हें कुछ

सामान्य श्रेणियों में रखने का प्रयास किया है। आरंभिक प्रयासों में एक प्रयास प्रसिद्ध अर्थशास्त्रा डेनियल थार्नर का है। उन्होंने भारतीय कृषिक समाज को सामाजिक वर्गों की एक व्यवस्था में श्रेणीकृत करने का प्रयास किया है। उनका विचार है कि भारत की कृषक आबादी को तीन स्तरों के अनुसार विभिन्न श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है। पहला, भूमि से प्राप्त आमदनी के प्रकार (जैसे 'किराया', 'अपनी खेती से लाभ' या 'मज़दूरी') दूसरा, भूमि संबंधी अधिकार (जैसे, 'स्वामित्व' या 'पट्टेदारी' या 'फसल में हिस्सेदारी के अधिकार' या 'कोई
अधिकार नहीं')। तीसरा, खेत में किए गए कार्य की मात्रा (जैसे, 'कुछ भी कार्य न करने वाले' या 'आंशिक कार्य करने वाले' या 'पारिवारिक श्रम से किया गया संपूर्ण कार्य' या 'मजदूरी के लिए दूसरों के लिए काम करने वाले')। इन स्तरों के आधार पर उन्होंने भारत में कृषिक वर्ग संरचना का निम्नलिखित रूप प्रस्तुत किया।

i) **मालिक** : इनकी आमदनी खेतों में स्वामित्व के अधिकार से होती है। इसका मुख्य स्वार्थ किराया अधिक वसूलना और मज़दूरी कम देने में होता है। ये पट्टेदारों, उप पट्टेदारों तथा फसल के साझीदारों से किराया वसूल करते हैं।

ii) **किसान** : काम करने वाले किसान जिनके पास छोटे-छोटे खेत होते हैं और स्वयं तथा अपने पारिवारिक सदस्यों के साथ श्रम करते हैं।

iii) **मज़दूर** : इनके पास कोई अपना खेत नहीं होता तथा इनकी आजीविका पट्टेदारी, फसल बँटाई या दूसरे के साथ मज़दूरी करने से चलती है।

कृषक आबादी का थोर्नर द्वारा किया गया वर्गीकरण भारत में कृषक परिवर्तनों का अध्ययन करने वाले विद्यार्थियों में अधिक प्रचलित नहीं रहा। आर्थिक क्षेत्र के कृषि क्षेत्र में पूँजीवादी संबंधो के विकसित होने से पुरानी वर्ग संरचना में भी परिवर्तन आया। उदाहरण के लिए, भारत के अधिकांश क्षेत्रों में भूमि मालिक उद्यमी या व्यावसायिक किसान बन गए। इसी प्रकार अधिकांश भूमि विहीन मज़दूरों में पट्टेदार तथा फसल के साझीदार मज़दूरी वाले श्रमिक के रूप में कार्य करने लगे। कृषि क्षेत्र में पूँजीवाद के विकास ने मार्क्सवादी विद्वानों की भविष्यवाणी के अनुरूप में किसानों में किसी प्रकार का अंतर भी उत्पन्न नहीं किया। इसके विपरीत मध्य वर्गीय किसानों की संख्या में वृद्धि हुई।

भारत में कृषिक संरचना और परिवर्तनों का अध्ययन करने वाले छात्रों में प्रचलित रहने वाला वर्गीकरण था कृषिक आबादी का चार या पांच वर्गों में विभाजन। इनमें सबसे ऊपर हैं बड़े ज़मींदार जो आज भी देश के अनेक हिस्सों में विद्यमान है। उनके पास अत्यधिक भूमि हैं यहाँ तक कि कइयों के पास एक सौ एकड़ से भी अधिक भूमि है। फिर भी पुराने ज़मींदारों की तरह वे हमेशा अपनी भूमि पट्टेदारी या फसल के सांझीदारों को नहीं देते। कुछेक ने अपने खेतों को आधुनिक उद्योग का दर्ज़ा दिया है जिसमें उन्होंने प्रबंधक तथा श्रमिकों की नियुक्ति की है तथा वे बाज़ार के लिए फसलों का उत्पादन करते हैं। वर्षों के अंतराल के बाद कृषक आबादी में उनकी संख्या पर्याप्त रूप से कम हो गई है। उनकी मौजूदगी अब देश के पिछड़े क्षेत्रों में ही अधिक है।

बड़े ज़मींदारों के बाद आते हैं **बड़े किसान**। उनके खेतों का आकार 15 एकड़ से 50 एकड़ तक या कुछ क्षेत्रों में इससे अधिक भी होता है। वे प्राय: अपने खेतों की स्वयं देखभाल करते हैं तथा श्रमिकों के साथ काम करते हैं। वे अपने खेतों में खेती के कार्यों में मशीनों का प्रयोग करते हैं तथा आधुनिक सामान जैसे रासायनिक उर्वरक तथा शंकर बीजों का इस्तेमाल करते

हैं। वे स्थानीय रूप से अधिपत्य वर्ग वाले होते हैं तथा स्थानीय अधिकार संरचना में उनका अच्छा दबदबा होता है। यह गाँव में तथा राज्य स्तर पर भी होता है। देश के विकसित कृषि क्षेत्र में बड़े किसानों की संख्या काफी है।

अगली **श्रेणी मध्य वर्गीय किसानों** की है। जिनके पास अपेक्षाकृत छोटे खेत (5 एकड़ से 10 या 15 एकड़ के बीच) होते हैं। सामाजिक स्तर पर बड़े किसानों की तरह वे भी स्थानीय रूप से आधिपत्य जाति वर्ग के होते हैं। फिर बड़े किसानों के विपरीत वे खेतों में अधिकांश कार्य स्वयं तथा परिवार के सदस्यों के साथ करते हैं। वे श्रमिकों को फसल काटने तथा फसल बोवाई जैसे व्यस्तम समय में ही नियुक्त करते हैं। वर्षों के अंतराल के बाद इस श्रेणी के किसान भी आधुनिक चीज़ें जैसे रासायनिक उर्वरक तथा शंकर बीजों का प्रयोग करने लगे है। संख्या की दृष्टि से किसानों में यह सबसे बड़ी श्रेणी है।

छोटे तथा लघुतम किसान भारत में कृषकों की चौथी श्रेणी है। उनके खेत काफी छोटे (पाँच एकड़ से कम तथा कहीं-कहीं एक एकड़ से भी कम) होते हैं। वे प्राय: अपने खेत में सभी काम स्वयं करते हैं तथा दूसरों को मुश्किल से कभी कभार ही अपने खेत में काम पर लगाते हैं। अपनी अल्प कृषि आमदनी को बढ़ाने के लिए उनमें से कुछ दूसरे किसानों के साथ कृषि श्रमिक के रूप में भी कार्य करते हैं। अनेक वर्षों के बाद ये भी आधुनिक कृषि वस्तुओं का प्रयोग करने लगे हैं। इन्होंने भी बाज़ार में बेचने के लिए नकदी फसलों का उत्पादन करना आरंभ कर दिया है। भारतीय गाँवों में इनकी अधिकांश आबादी ऋण ग्रस्त है। जैसे परिवार बड़े होते जाते हैं खेतों का विभाजन भी हो जाता है। भारत के अधिकांश क्षेत्रों में इनकी संख्या में काफी वृद्धि हुई है।

कृषक आबादी की अंतिम श्रेणी है **भूमि विहीन श्रमिक**। इनमें से अधिकांश पूर्ण अछूत या दलित जाति समूह के हैं। उनके पास खेती के लिए अपनी ज़मीन नहीं है। संपूर्ण कृषक आबादी में इनकी संख्या विभिन्न राज्यों में भिन्न-भिन्न है। पंजाब तथा हरियाणा जैसे राज्यों में वे संपूर्ण ग्रामीण श्रमिक बल का 20 से 30 प्रतिशत तक हैं। कुछ राज्यों जैसे आंध्र प्रदेश में उनकी संख्या पचास प्रतिशत तक है। ग्रामीण भारत में ये सबसे निर्धन हैं। वे न केवल बदहाल आवासों में और असुरक्षित आय के संसाधनों सहित दयनीय अवस्थाओं में रहते हैं अपितु उन्हें बड़े किसानों से ऋण लेना पड़ता है जिसके बदले वे अपने मानव श्रम को गिरवी रखते हैं। अर्थात् ऋण चुकाने के लिए उन्हें मुफ्त में काम करना पड़ता है। यद्यपि पुरातन दास प्रथा का प्रचलन तो अब नहीं है तो भी बड़े किसानों पर भूमि विहीन श्रमिकों की निर्भरता उन्हें अपनी आजादी सौंप देती है। जिससे वे न केवल अपने नियोक्ता या मालिक का चयन कर पाते हैं अपितु अपने राजनीतिक प्रतिनिधियों का भी चुनाव अपनी इच्छा से नहीं कर पाते हैं।

25.6 सारांश

इस इकाई में हमने कृषिक समाजों की धारणाओं की जाँच की है, उन पर चर्चा की है तथा उनका विश्लेषण किया है। हमने इन धारणाओं के विभिन्न प्रकारों की जाँच की है तथा वर्ग संरचना को प्रस्तुत किया है। इस बात की भी चर्चा की है कि ये संरचनाएँ कृषक समाजों के अध्ययन में कैसे लागू होती हैं। आगे हमने कृषिक सामाजिक संरचना, भारत में परिवर्तन तथा भारत में कृषक संरचना की भी चर्चा की है। इस प्रकार अब हम कृषक वर्ग संरचना का स्पष्ट वर्णन कर सकते हैं।

25.7 शब्दावली

कृषिक (Agrarian)	:	ग्रामीण तथा कृषि पर आधारित
किसान	:	छोटे खेत रखने वाले किसान जो अपने खेतों में परिवार सहित कार्य करते हैं।
मालिक	:	जिनके कब्जे में बड़ी संपत्ति होती है और जो श्रमिकों से काम करवाते हैं।
मज़दूर	:	भूमिविहीन फसल के साझीदार या पट्टेदार।
कृषक समाज	:	एक जैसा समाज, जो औद्योगिक स्वरूप वाला नहीं होता।

25.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

धांगरे, डी.एन. (1983), *भारत में कृषक आंदोलन,* 1920-50 दिल्ली, उत्तर प्रदेश।

गुप्ता, डी. संस्करण (1992) *सामाजिक स्तरीकरण,* दिल्ली, उत्तर प्रदेश।

25.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) कृषक समाज संरचना की संकल्पना मुख्यत: पश्चिमी समाज से आई है। विश्वास किया जाता है कि कृषिकों की उत्पत्ति भूमि जोतने वाले कबीलों से हुई है। वे छोटे-छोटे समूहों में रहते थे। कृषक समाज औद्योगिकरण से पूर्ण था। इस प्रकार कृषिक समाज मूलत: एक जैसी सामाजिक संरचना थी। क्योकि उनकी सामाजिक और आर्थिक संरचना प्राय: एक जैसी थी। मूलत: वे जिस ज़मीन पर कार्य करते थे वह उनके लिए पर्याप्त थी। अर्थात् वे आत्म निर्भर थे। इस प्रकार इस समाज में कोई बड़ी वर्ग विशमताएँ नहीं थीं। आंतरिक रूप से किसान मानवतावादी थे लेकिन उन पर बाहरी शहरी विशिष्ट या उच्च वर्ग का प्रभुत्व था। कृषिक समाज में होने वाली अधिक पैदावार, कर के रूप में शहरी शासकों को दी जाती थी।

2) शनीन के अनुसार अपने उपभोग के लिए उत्पादन करने वाला समाज आदर्श कृषिक समाज था। यह समाज शासकों अर्थात् राजनीतिक तथा आर्थिक अधिकार संपन्न लोगों के अहसान चुकाने के लिए भी उत्पादन करता था। उन्होंने कृषिक जीवन के परस्पर निर्भर चार घटकों का वर्णन किया है। ये हैं :

   i) किसान अपने परिवार की सहायता से अपने खेत में काम करते हैं।

   ii) खेतों में निम्न स्तर की तकनीकों से काम किया जाता है।

   iii) किसानों को विशिष्ट सांस्कृतिक स्वरूप होता है।

   iv) किसानों पर बाहरी अधिपत्य होता है।

बोध प्रश्न 2

1) पश्चिम में औद्योगिककरण के विस्तार से कृषि में श्रमिकों की संख्या अपेक्षाकृत कम हो गई। दूसरे इससे कृषिक संरचना में परिवर्तन आ गया। कृषि का आधुनिकीकरण और मशीनीकरण होने से अत्यधिक फालतू उत्पादन होने लगा। नकदी फसलों के द्वारा किसान अपनी आमदनी का पुनर्निविश करने लगे और बाजार से निकट संपर्क रखने लगे। इस प्रकार कृषक समाज में पूँजीवाद के विकास ने वफादारी तथा असंरक्षक संबंधों के लिए जरूरी कारकों में परिवर्तन ला दिया। इसने कृषक समाज में असमानता भी उत्पन्न की। फिर कृषि में मशीनीकरण के दबाव से कुछ किसानों को लाभ हुआ तथा कुछ भूमिविहीन मज़दूर बन गए। कृषि एक उद्यम बन गया तथा इससे मुनाफा कमाना कृषि का मुख्य उद्देश्य बन गया।

2) लेनिन के अनुसार पूँजीवाद के विकास ने कृषक समाज को निश्चित रूप से प्रभावित किया तथा पहले के विशमता रहित श्रेणियों को विभिन्न वर्गों में विभाजित कर दिया। रूसी कृषक समाज में i) भूमिपति, ii) धनी किसान, iii) मध्य श्रेणी के किसान, iv) गरीब किसान तथा v) भूमिविहीन मज़दूर वर्गों में विभाजित हो गया। लेनिन का मत था कि किसानों का ध्रुवीकरण होगा और वास्तव में केवल दो वर्ग बन जाएंगे। एक पूँजीपति किसान वर्ग तथा दूसरा भूमिविहीन सर्वहारा वर्ग।